Bodhi-Path Year 2023 January Issue Volume 24 Page No 57-62

पालकालीन बौद्ध विहारों में राजत्व का योगदान

प्रीति
बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

पुरातन गुरूकुल शिक्षण पद्धति से हम सब भलि–भांति परीचित है। बौद्ध महाविहार भी इसी पद्धति पर आधारित थे। यद्यपि इन बौद्ध विहारों का स्वरूप गुरूकुल पद्धति से अधिक विस्तृत और विशाल था। जहाँ एक ओर गुरूकुल में समाज के समृद्ध व उच्चकुल के विद्यार्थी जाते थे। वहीं दूसरी ओर बौद्ध महाविहार सबके लिए खुले हुए थे। ये अपने शिक्षण और ज्ञान के लिए ख्याति प्राप्त थे। इनके निर्माण तथा संरक्षण में शासकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। यद्यपि राजाओं के दान का स्वरूप आध्यात्मिक था। परंतु इनके कोशों से इन केंद्रों के लिए अनुदान प्राप्त होता रहा। पाल काल में मुख्य रूप से नालंदा, विक्रमशील, ओदंतपुरी, जगद्ल व सोमपुर (बांग्लादेश) महाविहार थे। इनमें न केवल बौद्ध साहित्य अपितु संस्कृत, न्याय, वेद, वेदान्त आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। इन केन्द्रों की विश्व प्रसिद्ध ख्याति इनके पाठ्यक्रम और विद्वानों के कारण थीं। विश्व के विभिन्न भागों से शिक्षार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने आते थे। इन केन्द्रों को दान और आश्रय प्रदान करने का वर्णन विभिन्न साहित्यिक और ऐतिहासिक साक्ष्यों में मिलता है। यह सर्वविदित है कि विशाल केन्द्रों के निर्माण में भूमि, वित्त और पोषण की मुख्य भूमिका रहती हैं। जिसकी पूर्ति और संचालन का कार्यभार राजाओं के माध्यम से हुआ। मौर्यों और गुप्त कालीन राजाओं के काल से चली आ रही संरक्षण की भूमिका को पाल शासकों ने भी पोषित किया। पूर्वी भारत के बिहार और बंगाल में बौद्ध शिक्षण केन्द्रों की स्थापना और संरक्षण पाल राजाओं ने तत्कालीन राजनैतिक विषमताओं के बीच भी पूर्ण निष्ठा के साथ किया।

आठवीं शताब्दी ईसवी के मध्य में पूर्वी भारत में जिस महत्वपूर्ण साम्राज्य की स्थापना हुई, उन्हें बंगाल के पाल कहा गया। हर्ष की मृत्यु के उपरांत एक दृढ़शक्ति के अभाव में राजनीतिक अर्थव्यवस्था ने अराजकता और अन्य शासकों के बंगाल पर अधिकार जमाने की चेष्टा ने गोपाल (730–770 ई.) को प्रथम पाल शासक के रूप में स्वीकार किया। खालिमपुर ताम्रपत्र से ज्ञात होता है।[1] इसमें गोपाल के पूर्वजों के नाम के अतिरिक्त इसके विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। पाल राजाओं ने स्वयं को परमसौगात की उपाधि दी। जिसका वर्णन तिब्बती परम्पराओं और इतिहासकारों के वर्णन से प्राप्त होता है। गोपाल की कला में विशेष रूचि थी। आर्य मंजुश्रीमूलकल्प में उसे विहारों, चैत्यों व जलाश्यों का निर्माता बतलाया गया है।[2] यद्यपि पाल स्थापत्य कला का चरमोत्कर्ष धर्मपाल (770–810 ई.) व देवपाल (810–850 ई.) के काल में हुआ। ये दोनों शासक बौद्ध धर्मी थे। जिसकी पुष्टि इनके लेखों व दानपत्रों के माध्यम से होती हैं। दानपत्र के ऊपर मध्य भाग में धर्मचक्र बना हुआ है। जिसके दोनों ओर मृग है तथा अभिलेख बुद्ध की प्रशंसा से प्रारंभ होता है।[3] इसके अतिरिक्त नालंदा ताम्रपत्र अभिलेख[4] पर अंकित मुहर भी यह प्रमाणित करती है कि ये बौद्ध धर्मी था। पाल शासकों की स्थापत्य कला का वर्णन और विहारों को दिया गया दान उनके अभिलेखों के माध्यम से निम्न प्रकार हैं। जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि ये बौद्ध धर्म के संरक्षक थे।

नालन्दा – नालन्दा विश्व का सबसे प्राचीन बौद्ध विहार माना जाता है। जिसके अवशेष बरगाँव के समीप है। नालंदा के नामकरण के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार जहाँ विद्या

कभी समाप्त नहीं होती, उसे नालंदा कहते हैं। 'न अलं ददाति इति नालंदा'। तारानाथ के अनुसार तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में अशोक ने यहाँ एक मंदिर का निर्माण कराया था। परन्तु नालंदा को इसकी वास्तविक पहचान 5वीं शताब्दी ईसवी में गुप्त काल में मिली। कुमारगुप्त काल के सिक्के इसके पुरातात्विक महत्व को वर्णित करते हैं। गुप्त शासकों का अनुदान इस विहार के निर्माण में अति महत्वपूर्ण रहा। जिससे सभी भलि–भांति परीचित है। इसके पश्चात् हर्षवर्धन काल में नालन्दा के संरक्षण में दिए दान का उल्लेख चीनी यात्रियों ने अपनी यात्रा वृतांत में किया है। इस समय तक यह अति महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका था। इसके गौरव व प्रतिष्ठा का अति सुन्दर वर्णन चीनी यात्रियों युवांग च्वांग व इत्सिंग ने अपने वर्णनों में किया हैं।

गुप्त काल में प्रसिद्ध व पल्लवित यह महाविहार पाल काल में बुलन्दियों पर था। पूर्व में यह महायान और हीनयान के साथ–साथ अन्य महत्वपूर्ण शिक्षाओं का केन्द्र था। परन्तु इस काल में यह वज्रयान का भी प्रमुख केन्द्र बन गया था। जिसके संरक्षण में पाल शासकों का अति महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन्होंने गुप्तों की दान और राजकीय संरक्षण प्रक्रिया को जारी रखा। जिसके कारण यह ख्याति प्राप्त महाविहार बन गया। जहाँ विदेशों से भी विद्वान ज्ञानार्जन करने के लिए आते थे। इसका प्रमाण यहाँ से प्राप्त ताम्रपत्र अभिलेख में मिलता है। ''इसमें सुवर्णद्वीप के शैलेन्द्र राजा बालपुत्र देव के एक विहार के निर्माण और साथ ही उनके निवेदन पर राजा देवपाल के भिक्षुओं के खर्च व पाण्डुलिपियों की नकल के लिए पाँच गाँव भेंट किये जाने का वर्णन हैं।''[5] तारानाथ के अनुसार इस महाविहार की कई ईमारतें थीं, इनमें से तीन के नाम रत्नोदधि, रत्नसागर, रत्नरंजक। महायान व हीनयान के ग्रन्थों के अतिरिक्त चिकित्सा, तर्कशास्त्र, वेद इत्यादि भी यहाँ के पाठ्यक्रम में शामिल थे। बौद्ध धर्म के अति महत्वपूर्ण विद्वानों का इस महाविद्यालय से संबंध था। जिनमें नागार्जुन, असंग, दिड़नाग, पद्मसंभव, शांतरक्षित, आर्यदेव, शीलभ्रद इत्यादि थे। जिन्होंने इस महाविद्यालय प्रसिद्ध विद्वान प्रदान किये। जिनकी विद्वता के कारण यहाँ जिज्ञासुओं व अध्ययनकर्ता का तांता लगा रहता था। ये अपने अपने विषय में इतने पारंगत थे कि इनके सानिध्य में ज्ञानार्जन के लिए प्रतियोगिताएँ होती थीं। विभिन्न रचनाओं के निर्माण व अनुवादन का श्रेय इन विद्वानों को दिया जाता है, जो शिक्षा और ज्ञान की अमूल्य निधि है।

देवपाल का घोष्रावां अभिलेख वज्रासन भवन का उल्लेख करता है। जिसका आरंभ बुद्ध की प्रशंसा से होता है। अंत में जिस भिक्षु ने यह भवन निर्मित कराया वह नालंदा विहार के परिपालन हेतु नियुक्त हुआ और उसी के अनुरूप एक भवन बनवाया।[6] 12वीं शताब्दी ईसवी तक यह ऊँचाईयों को छूता रहा। परन्तु इसके पश्चात् अपने अस्तित्व को बचाये रखने में असफल रहा और आक्रांतताओं के कारण नष्ट हो गया।

ओदन्तपुरी – नालन्दा जिले में पाल वंश के संस्थापक गोपाल ने ओदन्तपुर नामक नगर बसाया। तारानाथ के अनुसार गोपाल ने ओदन्तपुर नगर के निकट नलेन्द्र विहार का निर्माण करवाया था। तिब्बती

परम्पराएँ इस विहार को चमत्कारिक ढंग से सुखायी गयी झील के ऊपर निर्मित बतलाती है।[7] सम्भवतः कुछ विद्वानों का मत हैं कि यह एक बौद्ध विहार था, जो नालन्दा की भांति निर्मित किया गया था। इस महाविहार के शीघ्र ही कालकलवित हो जाने के कारण आज कोई अवशेष उपलब्ध नहीं है। केवल तिब्बती इतिहासकारों के वर्णनों में ही इसका कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। वेडेन के अनुसार ''इस विहार में विशाल मन्दिर में चार विशाल महाविद्यालय व अन्य भवन थे। इन भवनों को वृत्ताकार दीवार द्वारा घेरा गया था, जिसकी परिधि डेढ़ मील की थी। इस विहार के प्रवेश द्वार चार मुख्य दिशाओं की ओर थे। चारदीवारी के ऊपर की ओर ईंटों से बने चैत्य थे, जिनकी संख्या 1030 थीं जिन पर अभिलेख थे। मध्य में एक सभाकक्ष था। पूजागृहों में रखी मूर्तियां स्वर्ण व रतनजड़ित आभूषण व वस्त्रों से सुसज्जित थीं। देवी–देवताओं की पूजा आराधना से सम्बंधित पात्र, दीपक आदि स्वर्ण व रजत से निर्मित थे। मंदिर की दीवारों पर अभिलेख थे। मुख्य मन्दिर के बरामदे में द्वार के बायीं ओर दीवार पर चक्र का दीर्घकाय चित्र था।'' जिससे इसकी स्थापत्य कला का अनुमान लगाया जा सकता है कि नालंदा के समान ही इसकी ख्याति रही होगी। इस महाविहार में रहने वालों की संख्या 12000 बतायी जाती है। जिससे इसकी विशालता का ज्ञान होता है। अपनी मृत्यु के उपरांत गोपाल ने एक समृद्ध साम्राज्य अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ा, जिसे उन्होंने उत्कर्ष पर पहुँचाया।

विक्रमशील – गोपाल का उत्तराधिकारी धर्मपाल (770–810 ई.) जिसने विक्रमशील महाविहार की स्थापना की। वह भी अपने पिता के समान बौद्ध धर्म का अनुयायी था। राजनैतिक वातावरण और आक्रमणों के बीच इसने बौद्ध विहारों और केन्द्रों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके साथ ही नयपाल भी एक बौद्ध शासक था। इसने वज्रासन व विक्रमशील विहार को संरक्षण प्रदान किया। दीपांकर श्रीज्ञान, जेतारि और ज्ञानश्रीमित्र इसके समकालीन थे। दीपांकर श्रीज्ञान का तिब्बत में बौद्ध धर्म के लिए कार्य अति महत्वपूर्ण रहा। इन्होंने भारत व तिब्बत को एक सांस्कृतिक सूत्र में पिरोने का कार्य किया। इन्होंने आचार्य बोधिभद्र से शिक्षा ग्रहण की। दीपांकर एक महान विद्वान ही नहीं अपितु सिद्धयान के रहस्यों के भी ज्ञाता थे। विक्रमशील महाविहार की वही ख्याति थी, जो नालंदा महाविहार की थी। तिब्बती साहित्यों में इसे वही स्थान मिला, जो चीनी साहित्यों में नालंदा को मिला। विदेशों से आने वाले विद्यार्थियों में नालंदा से अधिक विक्रमशीला विहार में आते थे। यहाँ विद्वानों की संख्या 108 व महापंड़ित की संख्या 8 थीं। इनमें से एक दीपांकर श्रीज्ञान थे। विक्रमशीला विहार मुख्य रूप से कहाँ स्थित था। इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। पुरातत्व विभाग द्वारा कोलगाँव से 5 किमी. दूर बटेश्वर स्थान निर्धारित किया गया। जहाँ से अनेक मूर्तियाँ भी प्राप्त हुईं हैं।[8] तारानाथ के भारतीय बौद्ध धर्म का इतिहास के वर्णन से पता चलता है कि यह एक विशाल विश्वविद्यालय था। इसके छः द्वार थे। इन पर एक विद्वान होता था, जिसे द्वार पंड़ित कहा जाता था। महाविहार में 107 मंदिर व 6 अध्ययन कक्ष थे। मुख्य मंदिर के चारों ओर 53 कक्ष थे। जिनका प्रयोग तांत्रिक गुह्य कार्यों के लिए किया जाता था। सामान्य आवासों की संख्या 54 थीं।[9] तिब्बती अभिलेखों के अनुसार इस महाविहार की ख्याति दीपांकर श्रीज्ञान के कारण थी। जो तिब्बती राजा के

निमंत्रण पर तिब्बत गए और बौद्ध साहित्य का तिब्बती भाषा में अनुवाद हुआ। यह मुख्यतः तंत्रयान बौद्ध धर्म का सर्वाधिक प्रसिद्ध केन्द्र रहा, जिससे तिब्बती शिक्षार्थियों का प्रिय विश्वविद्यालय बना रहा।

धर्मपाल ने विक्रमशील महाविहार ही नहीं अपितु बंगाल में पहाड़पुर (सोमपुर) महाविहार की स्थापना भी की, जो वर्तमान बांग्लादेश में है। यहाँ से प्राप्त मुद्रा फलक जिस पर सोमपुर विहार के साथ धर्मपालदेव का नाम अंकित है, से यह सिद्ध होता है कि इसका निर्माण धर्मपाल ने कराया था। सोमपुर महाविहार इससे पूर्व ज्ञात सभी महाविहारों से बड़ा था। यह मुख्य रूप से बौद्ध भिक्षुओं के लिए ही बनाया गया। वर्तमान में उपलब्ध अवशेषों और अभिज्ञात स्थल पर हुए उत्खनन से इसकी विशालता और विशिष्टता का अनुमान लगाया जा सकता है। यह महाविहार 9वीं–12वीं शताब्दी ईसवी तक क्रियाशील रहा। इसने पूर्व कालीन बौद्ध विहारों की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा।

देवपाल (810–50 ई.) इस वंश का अगला उत्तराधिकारी था, जो अपने पिता के अनुरूप ही बौद्ध धर्मावालंबी था। देवपाल के मुंगेर दानपत्र अभिलेख[10] जिसका आरम्भ बुद्ध की प्रशंसा से हुआ है, जो इसके बौद्ध होने की ओर इंगित करता है। इसके अतिरिक्त नालंदा से प्राप्त ताम्र पत्र अभिलेख[11] जिसमें सुवर्ण द्वीप के शैलेन्द्र राजा बालपुत्र देव द्वारा यहाँ एक विहार के निर्माण और साथ ही उनके निवेदन पर राजा देवपाल द्वारा भिक्षुओं के खर्च व पाण्डुलिपियों की नकल के लिए पाँच गाँव भेंट किये जाने का वर्णन हैं। अभिलेख और उस पर अंकित मुहर से किसी भी प्रकार की आशंका का होना संभव नहीं कि यह दान भिक्षुओं की सुविधा के लिए दिया गया था।

इसके पश्चात् आने वाले पाल वंशीय राजाओं ने बौद्ध विहारों के निर्माण में ही नहीं अपितु मूर्तियों, मंदिरों आदि के निर्माण में योगदान दिया। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वे भी बौद्ध धर्म के अनुयायी रहे। इनके अभिलेखों से केन्द्रों के विकास और बौद्ध धर्म के विषय में जानकारी तो नहीं मिलती, परन्तु बौद्ध धर्म में उनकी विशिष्ट रूचि का ज्ञान अवश्य होता है।

जगद्दल – पाल काल का अंतिम बौद्ध महाविहार जगद्दल राजा रामपाल द्वारा स्थापित किया गया था। इसका प्रमाण ''ऐतिहासिक महाकाव्य रामचरित से होता है कि तत्कालीन पाल राज्य वरेन्द्र या वरेन्द्री के नाम से जाना जाता था और रामपाल छारा बसायी गई उसकी राजधानी रामावती कहलाती थी। जगद्दल महाविहार इसी क्षेत्र में आता था।''[12] रामपाल के शासनकाल के दूसरे वर्ष में इसका प्रथम अभिलेख तेत्रवन प्राप्त होता है। जिसमें तारा की मूर्ति निर्मित कराए जाने का उल्लेख है। अन्य पालकालीन विहारों के समान इसके भी स्थल निर्धारण और नष्ट होने के पश्चात् अज्ञात अवशेषों के अभाव में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। केवल कश्मीरी भिक्षु शाक्यश्रीभद्र की कथा ही शेष है। जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह भी तांत्रिक बौद्धधर्म के केन्द्र रहा जिसने तिब्बती बौद्धधर्म को प्रकाशवान करने का कार्य किया।

पालकाल में तंत्रयान बौद्धधर्म शीर्ष पर था। विहार स्थापत्यकला की प्रमुखता के कारण यह चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। ये महाविहार प्राचीन भारतीय शिक्षा का केन्द्र होने के साथ–साथ धर्म और संस्कृति के केन्द्र भी थे। इन्होंने न केवल स्थानीय विद्वानों अपितु विदेशी विद्वानों को भी अपनी ओर आकर्षित किया। इस वंश के प्रारम्भ में महाविहार मुख्य रूप से महायान तांत्रिक बौद्धधर्म के केन्द्र रहे। जिन्होंने तिब्बती महायान और तांत्रिक बौद्ध धर्म साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अतः यह कहना अतिश्योक्ति नहीं कि पाल राजाओं के काल में बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार इन विहारों के माध्यम से विभिन्न रूपों में हुआ। स्थापत्यों में प्रयुक्त जिस शैली का इन्होंने प्रयोग किया उसे मगधवंश शैली कहा जाता है। जिसे तारानाथ पूर्वी भारतीय शैली कहता है। जिसके प्रवर्तक धीमान व विपत्तपाल थे। इस शैली में काले रंग के चिकने पाषाण व धातुओं के माध्यम से मूर्तियों का निर्माण कराया गया। इनके लेखों में इनके दक्षिण पूर्व एशिया के साथ इनका सांस्कृतिक संबंध परिलक्षित होता है।

संदर्भ

1. इ. ह्ल्टज, *एपिग्राफिया इंडिका जि. 4,* ऑफिस ऑफ द सुप्रिटेंडेंट ऑफ गर्वनमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता, पृ० सं० 248।
2. के. पी. जायसवाल, *इम्पिरियल हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* मोतीलाल बनारीदास, लाहौर, 1934, पृ० सं० 514।
3. हीरानन्द शास्त्री, *एपिग्राफिया इंड़िका जि. 18,* द डायरेक्टर जनरल आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंड़िया, नई दिल्ली, 1983, पृ० सं० 304।
4. हीरानन्द शास्त्री, *एपिग्राफिया इंड़िका जि. 17,* द डायरेक्टर जनरल आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंड़िया, नई दिल्ली, 1983, पृ० सं० 318।
5. वही।
6. जॉन फेथफुल फलीट, संपा. टेम्पल रिचर्ड, *इंड़ियन एंटिक्वेरी. जि. 17,* एजुकेशन सोसाइटी प्रेस, बोम्बे, पृ० सं० 307–312।
7. ई. बुस्तोन, अनु. ओवर मिलर, *हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन इंड़िया एण्ड तिब्बत भाग 2,* इंस्टिट्यूट फॉर बुद्धिज्मस् कुण्डे, हैडलबर्ग, 1932, पृ० सं० 157।
8. प्रियसेन सिंह, *भारत के प्रमुख बौद्ध तीर्थ स्थल*, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1993, पृ० सं० 96।
9. आर. सी. मजुमदार, संपा. ए. डी. पुसाल्कर, *द एज ऑफ इम्पिरियल कन्नौज*, भारतीय विद्याभवन, बोम्बे, 1964, पृ० सं० 271।
10. हीरानन्द शास्त्री, *एपिग्राफिया इंड़िका जि. 18,* द डायरेक्टर जनरल आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंड़िया, नई दिल्ली, 1983, पृ० सं० 304 व आगे।

11. हीरानन्द शास्त्री, *एपिग्राफिया इंड़िका जि. 17,* द डायरेक्टर जनरल आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंड़िया, नई दिल्ली, 1983, पृ० सं० 318 व आगे।
12. प्रियसेन सिंह, *भारत के प्रमुख बौद्ध तीर्थ स्थल*, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1993, पृ० सं० 112।